वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

आचार्यशिरोमणि भगवान श्री कुंदकुंदआचार्यदेव के
आचार्यपदवीदिन मागशर वदि अष्टमी (०४-०१-२४) के
मंगल अवसर पर उनके चरणोंमें कोटी कोटी वंदन !!

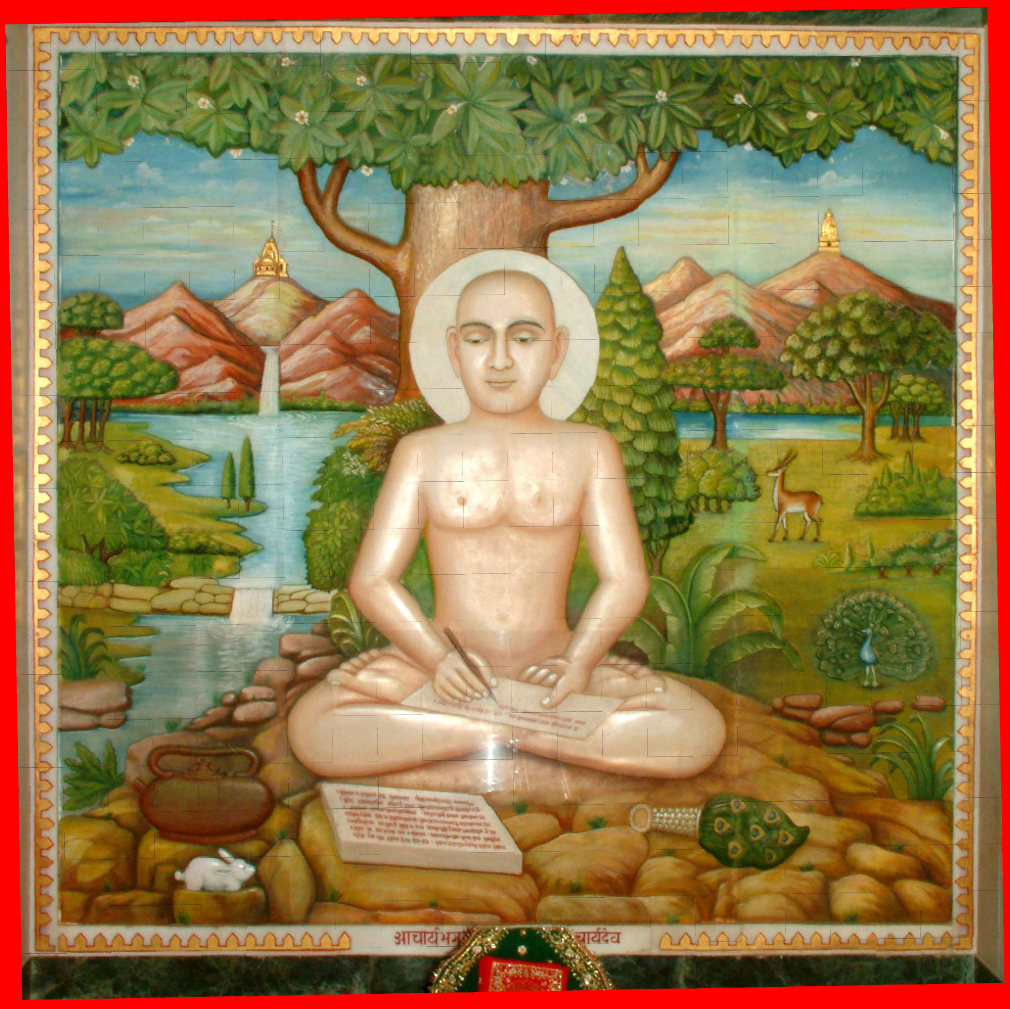

''मंगलम भगवान वीरो, मंगलम गौतमोगणी
मंगलम कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम''

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५०, अंक-३१३, वर्ष-२६, जनवरी-२०२४

श्रावण शुक्ल ७, रविवार, दि. २४-७-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन अंश, गाथा-१००से१०३ प्रवचन-४३

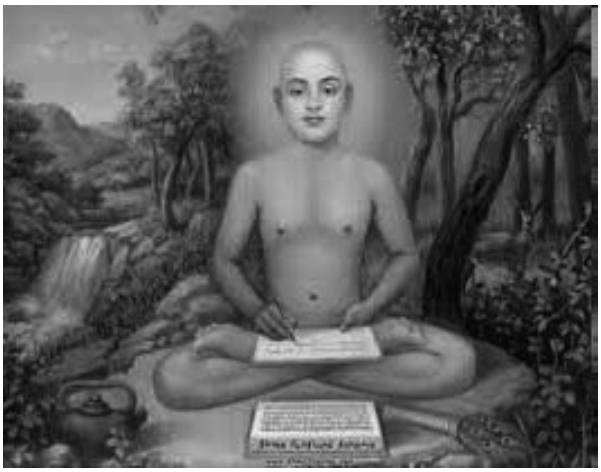

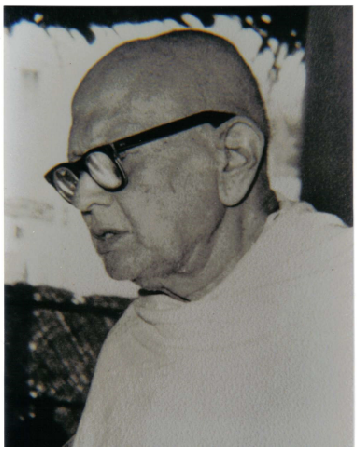

सामायिक - समताभाव किसे कहना? बात आयी- **'केवली एम भणइ'** आया है न? राग-द्वेष का परिहार (करके) समभाव को प्रगट करे, उसे सामायिक प्रगटरूप से केवली महाराज कहते हैं। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है - ऐसा जिसे अन्तर निर्णय और भान हुआ, उसे दूसरे प्राणियों के प्रति समभाव है। समझ में आया? धर्मी जीव की दृष्टि, मिथ्यादृष्टि से उलटी हो गयी है।

अज्ञानी दूसरों के काम देखकर इसने यह किया, उसने यह किया, इसने इसका बिगाड़ा, इसने इसका सुधारा - ऐसा मानकर अज्ञानी स्वयं राग-द्वेष करता है। ज्ञानी ऐसा जानता है कि कोई किसी का बिगाड़ता या सुधारता नहीं है। सब-सबकी दशा अपने कर्म -अनुसार संयोग-वियोग होता है। उसके कारण उसे दूसरों के प्रति इसने इसका ऐसा किया, इसलिए द्वेष होता है और इसने अच्छा किया, इसलिए राग होता है - ऐसा कारण सम्यग्दृष्टि को ज्ञान में, श्रद्धा में नहीं रहता। समझ में आया?

इस कारण यहाँ अन्त में यह कहा - **वह जानता है कि सर्व जीवों को सुख-दुःख और उनका जीवन-मरण उनके ही स्वयं के कर्मों के उदय अनुसार होता है, कर्मों के उदय को कोई मिटा नहीं सकता है।** यह बन्ध अधिकार की बात ली है। यहाँ धर्मी अपने आत्मस्वभाव को ज्ञाता-दृष्टारूप में स्वीकार करता, जानता, स्थिरता करता (है)। समझ में आया? दूसरे जीव का जीवन और मरण, सुखी-दुःखी के संयोग, कोई दूसरा किसी को कर सकता है - ऐसा ज्ञानी नहीं मानता है। जगत् में अनेक

काम चलते हैं, उनके अपने-अपने अन्तरंग उपादान (के) कारण से (वे) कार्य होते हैं।

मुमुक्षु - निमित्त आवे तो होते हैं।

उत्तर - यह प्रश्न ही कहाँ है? निमित्त कहाँ नहीं है? उस समय पदार्थ में कार्य नहीं, उस समय नहीं। अनादि-अनन्त पदार्थ में प्रति समय कार्य होता है।

मुमुक्षु - अच्छा निमित्त मिले तो कार्य होवे न?

उत्तर - उसमें अच्छे बुरे का प्रश्न ही कहाँ आया?

वस्तु छह द्रव्य... इसमें थोड़ा लिखा है। फिर आगे आयेगा। जैसे यह सूर्य उगता है, उससे कोई ऐसा विचार करे कि यह सूर्य झट अस्त हो जाये तो ठीक और झट उगे तो ठीक। कम सूर्य हो तो ठीक और बड़े तो ठीक? यह तो उसके कारण से उगता है और उसके कारण से अस्त होता है। उसमें कम-ज्यादा करनेपने का कार्य किसी को विकल्प नहीं आता। ऐसे ही धर्मी जीव को जगत के पदार्थ उसके क्रम में परिणमते हुए अपनी अवस्था के कार्य को करे, तब दूसरी चीज उस समय जो अनुकूल हो, वह होती ही है; इस कारण उसे दूसरे में विषमता उत्पन्न नहीं होती। इसी प्रकार मैंने दूसरे के काम कर दिये - ऐसा उसे अहंकार नहीं होता तथा दूसरे मेरा काम कर दें - ऐसी उसे मान्यता नहीं होती है।

मुमुक्षु - काम कर दिया यही अहंकार?

उत्तर - अहंकार नहीं होता, इसका अर्थ भी कर नहीं सकता; इसलिए अहंकार नहीं है। किसका कार्य करे? कौन द्रव्य निकम्मा है? निकम्मा अर्थात्? उसके काम में - कार्य की पर्यायरहित द्रव्य.... **पर्याय विजुत्तम दव्वम्** पर्यायरहित द्रव्य कहो या कार्यरहित द्रव्य कहो, दोनों एक ही स्वरूप हैं। आहा...हा...! समझ में आया? शास्त्रकार की भाषा है कि **पर्याय विजुत्तम दव्वम्** और **द्रव्य विजुत्तम पर्याय** पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता और द्रव्यरहित पर्याय नहीं होती। इसका अर्थ यह है कि कार्यरहित द्रव्य नहीं होता और कारणरहित वह कार्य नहीं होता। कारण अर्थात् द्रव्य। समझ में आया? आहा...हा...!

छह द्रव्यों का जो वास्तविक स्वभाव है, उसका कारणरूप द्रव्य तो स्वयं कारण है, उसकी पर्याय का। प्रति समय कारण वह और पर्याय उसका कार्य। कहाँ कार्यरहित, वह द्रव्य है? और उस कार्य का जो कारण, द्रव्य कहाँ नहीं है? संयोगी जीव हो तो हो भले, उसके साथ क्या सम्बन्ध?

मुमुक्षु - कारण-कार्य की मीमांसा....

उत्तर - यही कार्य-कारण की मीमांसा है। समझ में आया?

इसलिए यहाँ कहते हैं, कोई किसी को कौन मारे? कौन जिलाये? कौन दे? किसे दे? किसे ले? ऐसे समस्त भ्रम अज्ञानी को होते हैं कि इसने यह दिया और इसने यह लिया - ऐसा ज्ञानी को नहीं होता; इसलिए सहजरूप से धर्मी को उस प्रकार का पर का कारण बनाकर विषमताभाव उत्पन्न नहीं होता (था), वह नहीं होता। रविवार है, रविवार है, इसलिए वकील फुरसत में होते हैं।

यहाँ तो कहते हैं, **आत्मा ऐसे समभाव के धारक ज्ञानी गृहस्थ, सामायिक शिक्षाव्रत और मुनि, सामायिक चारित्र के पालक हैं।** गृहस्थाश्रम में भी अपने सम्यग्दर्शन और ज्ञान का भान है; इस कारण उसे पर के प्रति विषमता मिट गयी है अथवा अपने ज्ञान में रागादि कोई कमजोरी से होते हैं, उसे अपने स्वभाव में खतौनी नहीं करता है। समझ में आया? यह दृष्टान्त दिया है, देखो!

समयसार कलश में कहा है : अन्तिम दृष्टान्त **'इति वस्तु स्वभावं स्वं ज्ञानी जानाति तेन सः'** 'बन्ध अधिकार' का १७६ वाँ कलश है। 'बन्ध अधिकार' का १७६ वाँ संलग्न... संलग्न... १७६ (श्लोक)। **'रागादीन्नात्मनः कुर्यान्नातो भवति कारकः'** सम्यग्ज्ञानी अपने ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव को जानता हुआ, **ज्ञानी इस तरह सर्व वस्तुओं के स्वभाव को....** समस्त वस्तुओं के स्वभाव को और **अपने आप को ठीक-**

ठीक जानता है। सभी चैतन्य परमात्मस्वरूप ज्ञाता हैं - ऐसा जानता है। राग-द्वेष की विषमता हो तो उसे व्यवहार से वैसा जानता है। द्रव्यरूप से जगत् के परमाणु आदि सामान्यरूप से उन्हें जानता है, व्यवहाररूप से उनकी पर्याय उनका कार्य है; इस तरह उस पर्याय को कार्यरूप से व्यवहारनयरूप से जानता है। समझ में आया? उसकी पर्याय - कार्य व्यवहारनय से जानता है - ऐसा कहा। वहाँ वह पर्याय का व्यवहार है; निश्चय उसका द्रव्य है। समझ में आया?

परमाणु अनन्त हैं, उनका सामान्यपना, ध्रुवपना वह उनका द्रव्य है, निश्चय है। उसकी पर्याय वह प्रति समय (होती है), वह उसका व्यवहार। यह व्यवहार.... निश्चय और व्यवहार। पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता। निश्चय, व्यवहार बिना का नहीं होता। द्रव्य कार्य बिना का नहीं होता। कार्य को अपना द्रव्य कारण नहीं है - ऐसा द्रव्य उसे नहीं होता, ऐसा नहीं होता। आहा...हा...! अद्भुत बात भाई!

ऐसी समता होने पर **अपने में राग-द्वेष भाव नहीं करता....** अर्थात्? राग-द्वेष के विकल्प जरा हों, परन्तु मैं आत्मा ज्ञाता-ज्ञानस्वरूपी शुद्धस्वभाव हूँ - ऐसा जानता हुआ उस राग को अपने ज्ञानस्वभाव में मिलाता, शामिल करता, खतौनी करता नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...! ऐसा समभाव है। कोई लकड़ी मारे तो समभाव (रखना) - ऐसा समभाव नहीं। लो! किसी ने लकड़ी मारी और क्षमा रखी, वह क्षमा नहीं।

मुमुक्षु - एक थप्पड़ मारे तो दूसरी मारने दे न!

उत्तर - मारे कहाँ? यह तो सब ख्रिस्ती की बातें हैं। ईशु ख्रिस्ती कहते हैं न! एक ऐसा मारे तो ऐसा मार, वह समभाव... यह समभाव की व्याख्या ही नहीं है।

समभाव की व्याख्या - आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव और पुण्य-पाप के विकल्प एक प्रकार के उत्पन्न हों, वह सब एक ही प्रकार का बन्धभाव है, दोनों विषमभाव है; स्वभाव समभाव है - ऐसा जहाँ विवेक होता है, वहाँ समभाव होता है। उसे समभाव कहते हैं। ऐसा दूसरे कहें एक ओर तू यहाँ मारो, दूसरी ओर यहाँ मारो... ईशु ख्रिस्ती... उसे पता ही नहीं है। मारे किसे और सहन करना किसने? समझ में आया? ज्ञान भगवान आत्मा अपने समस्वभावी चैतन्यरस को ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जानता है। उसमें पुण्य-पाप की कमजोरी के कारण होनेवाले राग को स्वभाव में नहीं मिलाता। बस, इस अपेक्षा से वह राग-द्वेष को नहीं करता। समझ में आया? यह सामायिक की बात हुई।

अब, छेदोपस्थापना की (गाथा है)।

छेदोपस्थापना चारित्र

हिंसादिउ-परिहारू करि जो अप्पा हु ठवेइ।
सो वियऊ चारित्तु मुणि जो पंचम-गइ णेइ।।१०१।।

हिंसादिक परिहार से, आत्म स्थिति को पाय।
यह दूजा चारित्र लख, पंचम गति ले जाय।।

अन्वयार्थ - **(जो हिंसादिउ-परिहारू करि अप्पा हु ठवेइ)** जो कोई हिंसा आदि पापों को त्याग करके आत्मा को स्थिर करता है **(सो वियऊ चारित्तु मुणि)** सो दूसरे चारित्र का धारी है, ऐसा जानो **(जो पंचम-गइ णेइ)** यह चारित्र पञ्चम गति को ले जाता है।

हिंसादिउ-परिहारू करि जो अप्पा हु ठवेइ।
सो वियऊ चारित्तु मुणि जो पंचम-गइ णेइ।।१०१।।

जो कोई आत्मा, हिंसा आदि पाप के परिणाम के अभाव-स्वभावस्वरूप आत्मा को **स्थिर करता है.... अप्पा हु ठवेइ** नास्ति की। हिंसा, झूठ, चोरी आदि के भाव का अभाव करके, यह तो नास्ति से बात कही, भगवान ज्ञायकस्वरूप में **ठवेइ... ठवेइ..** 'छेदोपस्थापना' शब्द है न? भाई! इससे उसमें से यह शब्द निकाला। ऊपर 'स्थाप' शब्द है सही न? अहा...! इसलिए अध्यात्म की बात की। छेद + उपस्थित। छेद - विकार का छेद करके आत्मा में स्थापित होना, उसे छेदोपस्थापना -

ऐसा अर्थ यहाँ किया है। अध्यात्म है। परिहार में ऐसा लेंगे... यथाख्यात में ऐसा लेंगे। सूक्ष्म सम्पराय वह खोटा है, वह चारित्र यथाख्यात सूक्ष्म सम्पराय लिखा है, यह सूक्ष्म सम्पराय नहीं, यह यथाख्यात है। सूक्ष्म शब्द पड़ा है न! इसलिए भ्रम हो गया है। समझ में आया? आयेगा गाथा में।

यहाँ कहते हैं, **हिंसादिउ-परिहारू** भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप के भान में, काल में, स्वरूप की स्थिरता आत्मा में स्थापता है, तब उसे हिंसा आदि परिणामों का वहाँ अभाव होता है। अभाव होकर आत्मा में आत्मा को स्थापित करता है, वह **वियऊ चारित्तु...** योगीन्द्रदेव उसे छेदोपस्थापना कहना चाहते हैं। समझ में आया? वरना तो सामायिक में स्थिर होता है, उसमें कोई विकल्प दोष लगा हो, उसे छेदकर फिर स्थिर हो तो उसे छेदोपस्थापनीय कहते हैं।

यहाँ तो उसी प्रकार अध्यात्म से लिया है। भगवान आत्मा... छेद - उपस्थ, उपस्थ। भगवान आत्मा समस्वभावी वीतरागी बिम्ब आत्मा है। उसे वीतरागी स्वभाव से विरुद्ध हिंसा झूठ आदि का परिणाम जो विषम है, उन्हें छोड़कर स्वभाव में आत्मा को थवेइ स्थापित करता है, उसे दूसरा चारित्र छेदोपस्थापनीय कहा जाता है। कहो समझ में आया? अन्तिम गाथाएँ हैं न! चारित्र, मोक्ष का मूल है न! दर्शन-ज्ञान भले हो परन्तु मूल चारित्र, वह मोक्ष का कारण है। **चारित्त खलु धम्मो** और पंचास्तिकाय में अन्त में चारित्र लिया है न! चारित्र में थोड़ा बाकी रहे, उतना पर समय बाकी है... चारित्र पूरा हो जाये, चारित्र की रमणता वही मोक्ष का कारण है। हाँ, वह चारित्र, सम्यग्दर्शन के बिना नहीं होता, यह अलग बात है परन्तु मोक्ष का साक्षात् कारण तो स्वरूप की रमणता है। आहा...हा...! वह रमणता स्वरूप के दर्शन और ज्ञान के बिना नहीं होती है। भगवान आत्मा समस्वभावी चैतन्यसूर्य के दर्शन, अवलोकन, उसकी श्रद्धा और उसके ज्ञान बिना स्वरूप में स्थिरता - ऐसा चारित्र, रमणता - ऐसा चारित्र नहीं होता परन्तु वह चारित्र तो साक्षात् मोक्ष का कारण है। आहा...हा...! समझ में आया?

वह दूसरे चारित्र का धारक है - ऐसा जानना। यह चारित्र पंचम गति को ले जाता है। पाठ है न देखो! **पंचम-गइ णेइ** पहुँचाता है, पंचम गति पहुँचाता है, ले जाता है। भगवान आत्मा स्वरूप की रमणता करते, ध्रुवस्वरूप भगवान में रमणता करते हुए ध्रुव पर्याय - ऐसी प्रगट होती है, ध्रुव पर्याय अर्थात् है तो पर्याय परन्तु उसे कूटस्थरूप ऐसी की ऐसी ही स्थिरता कायम रहती है; इसलिए उसे एक न्याय से ध्रुव और कूटस्थ भी कहा जाता है।

ध्रुवस्वरूप में स्थिरतारूपी पर्याय प्रगट होने से केवलज्ञान को भी एक न्याय से कूटस्थ कहा है। पंचास्तिकाय... है न? अपेक्षा से। ऐसा का ऐसा और ऐसा का ऐसा है। स्थिरता ऐसी की ऐसी, ऐसी की ऐसी स्थिरता रहती है। जैसे, स्वयं स्थिरबिम्ब भगवान है, उसमें स्थिरता का अन्तर अभ्यास होने पर वह स्थिरता ऐसी की ऐसी कायम रह जाती है। भले पलटे भले, परन्तु स्थिरता ऐसी की ऐसी वीतरागता कायम रहती है; इसलिए उसे ध्रुव भी एक न्याय से कहा जाता है। समझ में आया? आहा...हा...!

यह अध्यात्म की बात की है न, उसकी - साधु की कितनी ही बात की है, ठीक है। उसका अन्तिम श्लोक तत्त्वार्थसार का है। **जहाँ हिंसादि के भेद से पापकर्मों का त्याग करना या व्रत भंग होने पर प्रायश्चित लेकर फिर व्रती होना, सो छेदोपस्थापना चारित्र है।** दो प्रकार का लिया है न? दो प्रकार हैं। प्रवचनसार में चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में दो प्रकार हैं। सामायिक में से भेद पड़कर स्थिर रहना या छेद करके स्थिर रहना - यह दो प्रकार के हैं। कहो, समझ में आया? अब तीसरा श्लोक १०२, यह बहुत साधारण बात है। इसलिए नहीं लेते। देखो! परिहारविशुद्धिचारित्र की व्याख्या अध्यात्म की।

(प्रवचनका शेष अंश अगले अंकमें...)

श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१२८ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई का कोयम्बतुर में हुआ प्रवचन दि: २७-१२-१९९७

(श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत) १२८ पत्र चलता है। किसी भी मनुष्यको मानो इन्कमटेक्सका भी प्रोब्लेम है और ऑफिसमें स्टाफके भी छोटे-मोटे प्रोब्लेम हैं। जैसे कोई तनख्वाह ज्यादा माँगता है, कोई advance में लेना चाहता है, फिर काम बराबर नहीं करता है, कोई देरी से आता है। वह किसको पहले हाथमें लेगा ? ऐसे हमारे जीवनमें प्रोब्लेम तो बहुत हैं। पर सबसे बड़ा प्रोब्लेम कौनसा है ? मृत्युका । कोई मरना नहीं चाहता, किसीको मरना नहीं है। और यह एक बार (नहीं) अनंतबार मरनेकी बात है। तो सबसे बड़ा प्रोब्लेम कौनसा हुआ ? कि अनंत मरणका (और) अनंत जन्म का। इसलिये ज्ञानियोंने सबसे पहले बड़े प्रोब्लेम को हाथमें लिया है।

१२८ का पत्र क्या सूचित करता है ? कि छोटे-मोटे बहुतसे प्रोब्लेम हैं जैसे लोग कहते हैं ना ? हमारी जिम्मेदारी है क्या करें ? संसारमें भी अनेक कार्योंकी हमारी जिम्मेदारी है। हम गृहस्थी निभाये, हम व्यवसायका (काम) करें या हम यह धर्मकी बात हाथमें लें ? कौनसा करें ? लेकिन तुलनात्मक बुद्धिसे विचार करना है कि हमारे घरके भी प्रोब्लेम हैं, व्यवसायके भी प्रोब्लेम हैं और हमारे जन्म-मरणका भी प्रोब्लेम है। अब (मुख्यता) किसको देना है ? शायद समझानेकी जरूरत नहीं है कि ज्ञानी हैं, वे सबसे अधिक समझदार हैं यह बात इससे सिद्ध होती है। संसारके बुद्धिमान लोगोंसे भी ज्ञानीकी विचारशक्ति - विवेकशक्ति अधिक है वह इससे सिद्ध होता है। ये सबसे बड़ा प्रोब्लेम उन्होंने हाथमें लिया और इसका समाधान ढूँढ़ा, खोजा और उसको पार भी किया।

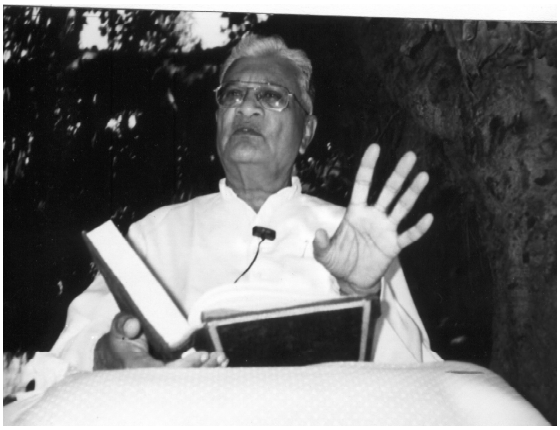

इसलिये यह जो प्रोब्लेम आता है कि हमारे घरेलू जीवनका क्या? हमारे व्यावसायिक जीवन कार्यका क्या करेंगे? अगर इसमें हम लगेंगे तो वह कैसे होगा? ज्ञानियोंने तो बात बहुत सरल कर दी, सुगम कर दी (है)। देखिये यह सब तो तुम्हारे प्रारब्ध आधीन है, तुम्हारी अक्कल, होशियारी, चतुराई, इसमें काम करती है ऐसा मानना वह जोखिममें रहनेके बराबर है। हमारे प्रारब्धके अनुसार यह होनेवाला है और अभी तक हुआ भी ऐसा ही है। अक्कल, होशियारी तो उतनी की उतनी थी फिर भी कभी खोया है, कभी पाया है। तो उसको प्रारब्ध पर छोड़करके जो पुरुषार्थ आधीन कल्याणका, जन्म-मरणके नाशका उपाय है उसको क्यों नहीं करते ? इसलिये top priority में इस विषयको रखा है। विचारशक्ति कितनी विशेषरूपसे काम करती है इसका यह सबूत है। इसलिये इस पत्रमें यह विषय लिया है और हमारा जो चलता विषय था उसमें कुछ सूत्र लिखे हैं। उसमें दूसरा सूत्र चल रहा था।

'सत्संगके बिना ध्यान तरंगरूप हो जाता है।' पहले तो ध्यान माने क्या? एकाग्रता होना उसीका नाम ध्यान है। एक विषयमें एकाग्र हो करके इतना एकाग्र होते हैं कि दूसरे विषयके बारेमें विकल्प भी नहीं चले, चिंता ही नहीं होवे उसे कहते हैं ध्यान। उमास्वामी महाराजने तत्त्वार्थ सूत्रमें-सूत्रजीमें इसका सूत्र इस तरहसे लिखा है **'एकाग्र चिंता निरोधो ध्यानम्।'** अब ध्यान है वह चार प्रकारका है। आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान। प्रकारांतरसे, रूपस्थ ध्यान, रूपातीत ध्यान भी बोला जाता है। चारमें सब आ जाते हैं। अलग-अलग दृष्टिकोणसे उसका विचार किया गया है।

आर्त्तध्यान तो सभी संसारी प्राणियोंको होता ही है। आर्त्तध्यान माने क्या ? शरीरकी चिंता, संयोगकी चिंता, अनुकूलता-प्रतिकूलताकी चिंता, समस्त प्रकारके शुभाशुभ परिणामोंमें जहाँ भी एकाग्रता होती है (वह) सब आर्त्तध्यानमें जाता है, आर्त्त माने इच्छा। इच्छाके खिँचावको आर्त्त कहते हैं। इच्छासे परिणामका जो खिँचाव होता है उसको आर्त्त कहते हैं। वह सभीको होता है।

कभी-कभी किसी जीवको रौद्रध्यान होता है। ये बहुत बुरा ध्यान है। रौद्रध्यानमें क्या होता है? हिंसानंदी, हिंसा करके आनंद माने वह हिंसानंदी है। चौर्यानंदी, चोरी करके आनंद माने वह चौर्यानंदी है ऐसे तीव्र पापके परिणाममें बहुत आनंद और खुशीका अनुभव होता है उसको कहते हैं रौद्रध्यान। आर्त्तध्यानसे बहुभाग जीव तिर्यंचगतिमें जाते हैं, और तिर्यंचगतिकी संख्या बहुत बड़ी है। तीनों गतिमें सबसे ज्यादा संख्या तिर्यंचगतिमें होती है। सबसे कम संख्या मनुष्यगति की होती है, इससे ज्यादा नारकी हैं, इससे ज्यादा देव हैं (और) सबसे ज्यादा तिर्यंच हैं। तीनों कालमें ये परिस्थिति है। आर्त्तध्यान तिर्यंचगतिका कारण है। रौद्रध्यान है वह नरकगतिका कारण है।

धर्मध्यान है वह मोक्षका कारण है, वह पंचमगति है। संसारकी चारगतियाँ छोड़करके जो मुक्तिमें जाते हैं (वे) धर्मध्यानसे जाते हैं और धर्मध्यान जब विशेष निर्मल होता है उसकी डिग्री बढ़ जाती है तब उसीको शुक्लध्यान बोला जाता है, जाति एक ही है।

प्रश्न : रागका तीव्र रस किसमें जाता है?

पू.भाईश्री : तीव्र रस आर्त्तध्यानमें जाता है।

प्रश्न : ध्यान सभी जीवको होता ही है?

पू.भाईश्री : ध्यान होता ही है। बिना ध्यानका कोई जीव नहीं है। ध्यान चालू ही रहता है या बहुभाग आर्त्तध्यान चालू रहता है। (प्राय:) (सबको) आर्त्तध्यान चालू रहता है। ध्यान रहित कोई जीव नहीं है, अब practically(अनुभवसे) इस विषयका विचार करें तो ध्यान कहाँ लगता है, कि जहाँ सुखबुद्धि होती है, सुखका निश्चय होता है वहाँ ध्यान लग जाता है। चाहे सुख वहाँ हो (या) नहीं हो वह अलग बात है-दूसरी बात है लेकिन जब किसीने निश्चय किया कि मेरा सुख यहाँ है तो उसका ध्यान वहीं रहेगा। practically देख लीजिये ऐसा होता है की नहीं होता है। अब भगवान कहते हैं कि तेरा सुख तेरे आत्मामें है। इस ग्रंथमें १०८ नंबरका पत्र है, उसमें कृपालुदेवने बार-बार यह बात कही है कि हे जीव! तुम मत भूलना, (कि) तेरा सुख तेरे आत्मामें है। बाहरमें कहीं तेरा सुख नहीं है और बाहर ढूँढ़नेसे मिलनेवाला भी नहीं है। तो जिसको अपनेमें अपना सुख दिखता है, उसको स्वरूपका ध्यान-आत्माका ध्यान होता है आत्मामें सुख दिखे बिना आत्माका ध्यान होनेवाला नहीं है। चाहे कोई कितना भी मन, वचन, कायासे प्रयोग करे, आत्मध्यान होनेवाला नहीं है। क्योंकि सुख (तो) देखा नहीं कहाँसे ध्यान होगा? और जहाँ सुख माना है, निश्चय किया है वहाँ तो परिणाम गये बिना रहेंगे नहीं।

जैसेकी आप विपश्यना ध्यान शिबिर करके आये लेकिन आपकी सुखबुद्धि तो हटी नहीं। संसारके पदार्थोंमेंसे सुखबुद्धि तो हटी नहीं। अनुकूलतामेंसे तो सुखबुद्धि हटी नहीं। एक अनुकूलतामें पाँचों इन्द्रियोंका विषय समाविष्ट है। वह वैसीकी वैसी रहे और आपका आत्मामें ध्यान लग जाये (यह) बात असंभव है। कभी होनेवाला नहीं

है। कुछ कृत्रिम प्रयास करके temporary कषाय मंद होता है, परिणामकी चंचलता कम होती है (लेकिन) इससे कोई permanent solution तो नहीं निकलता।

यहाँ कृपालुदेव कहते हैं कि सत्संगमें यह बात समझमें आती है कि दुर्ध्यान क्या है? अपध्यान क्या है? और धर्मध्यान क्या चीज है? और कैसे होना चाहिये? जहाँ तक सत्संगसे यह बात समझमें नहीं आये उसके पहले कोई वैसे ही आँख बंद करके पद्मासनमें बैठ जाये और ध्यान लग जाये ऐसा होनेवाला है ही नहीं। विपश्यना तो दृष्टांत है। हमारे जैन संप्रदायमें भी कई लोग ध्यान कराते हैं, अलग-अलग शिबिरोंमें आश्रमोंमें सुबह, शाम यह ध्यानका पीरियड रखा जाता है। ऐसे कोई ध्यान होनेवाला है ही नहीं। ये समय और शक्तिका दुर्व्यय है। इतना नुकसान तो है ही दूसरा नुकसान जो सबसे बड़ा है वह misconcept का है। अभिप्रायकी भूल है। जिस विधिसे जो काम करना चाहिये उस विधिसे काम नहीं करना और उस विषयमें दूसरा निश्चय कर लेना, इसको छुड़ाना मुश्किल हो जाता है। लोग ओघसंज्ञामें फँसते हैं और बहुत ज्यादा काल ओघसंज्ञामें रहनेसे ओघसंज्ञा इतनी दृढ़ हो जाती है कि सही प्रयोगमें आनेमें बहुत दिक्कत आती है और बहुत कठिनाई हो जाती है।

इसलिये ज्ञानियोंने एक बातकी सूचना की है कि देखिये कोई साधन करनेमें देर-सबेर होवे उसकी कोई आपत्ति नहीं (है) लेकिन जो कुछ भी करना हो वह सही करना। भले ही थोड़ा होवे या देर-सबेर होवे - कम होवे और उसमें कुछ समय लगे, उसमें कोई उलझनमें आनेकी बात नहीं है लेकिन जितना भी करना, थोड़ा भी करना, सही करना चाहिये। वरना परिश्रम और बढ़ जायेगा।

प्रश्न : आत्मामें सुख कैसे लगता है ?

पू. भाईश्री : बहुत अच्छा प्रश्न है। जब सुखसे जीवके परिणाम आकर्षित होते हैं और सुख आत्मामें है ऐसा ज्ञानियोंने बताया, तो लगे कैसे ? क्योंकि वह लगनेकी चीज है। सुख-दुःख विचारकी चीज नहीं है। अनुभव करनेकी चीज है - लगनेकी चीज है। तो सुख लगे कैसे? बात तो ठीक है, क्योंकि बाहरमें तो सुख लगता है इसलिये हमारे परिणाम जाते हैं। आप युक्तिसे उसको सिद्ध कर सकते हैं कि देखो वहाँ सुख नहीं था तो तुमको मिला भी नहीं यानी तृप्ति नहीं हुई। बहुत खाते-खाते भी तुम थक गये। माना था की मिठाई खानेमें सुख है। बात तो ठीक है लेकिन वह बात तो नास्ति की हो गई कि वहाँ सुख नहीं है। चलो ठीक है माना, लेकिन आत्मा में सुख है ऐसा लगे बिना मानेंगे भी कैसे ? सिर्फ कहनेसे कोई माननेवाला नहीं है।

ये आत्मा पक्का बनिया है। पक्का बनिया मतलब क्या है ? कि जो व्यापारी है इसके पास जो ग्राहक आता है वह बोलता है कि बहुत बड़ी खरीद करनी है, और माल आपसे ही लेंगे दूसरेसे नहीं लेंगे और माल भी थोड़ा नहीं लेना है, हमारी जो purchase है, बहुत बड़ी है। तभी बेचनेवाले को लगता है कि पैसा लेके आया होगा या उधार लेनेकी बात होगी ? क्या बात होगी ? अगर बड़ी खरीदी होती है, (और) उधार देना हो तो देना या नहीं देना बात सोचनी पड़ती है। फिर अगर वह दिखादे कि देखो मैं तो hard cash लाया हूँ। currency लेके आया हूँ, चेकसे भी नहीं लेना है। तब तो शंकाका कोई स्थान नहीं है। competitive rate में माल बेचेगा। क्योंकि पैसा देख लिया, क्या देख लिया ? पैसा देख लिया । ऐसे व्यापारी लोग जैसे पक्के होते हैं, वैसे आत्मा भी ऐसा ही है। व्यापार के कई principles इसमें लागू होते हैं।

उसे सुख दिखेगा, तो सुखके पीछे दौड़ेगा और नहीं दिखेगा तो अगर तीर्थंकर भी कहेंगे तो भी नहीं मानेगा। तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनिमें बहुत बार सुना कि सुख तेरे आत्मामें है, लेकिन बात गले नहीं उतरी। सुख देखेगा तब मानेगा। सुख देखनेका एक तरीका है। प्रश्न तो बढ़िया है। किस तरीकेसे हम हमारे आत्मामें सुखको देखें ? बहुत प्रयोजनभूत बात है, सुखका मतलब है न? मतलबकी बात है - प्रयोजनकी बात है। तब देखिये आपके परिणमनमें

कषायके परिणाम होते हैं। शुभाशुभ दोनों प्रकारके कषाय हैं। उनमें आकुलता और दु:ख है जबकि परिणाममें ज्ञान भी परिणमन करता है, जिसमें कषायका अभाव है। परिणाममें दो प्रकार हैं। एक सकषाय परिणाम (यानी) शुभाशुभ (और) एक अकषाय परिणाम, मात्र ज्ञानका। कषायसे भिन्न-शुभाशुभ परिणामसे भिन्न, अकेले ज्ञानको देखनेमें आये तो ज्ञान सुखरूप दिखेगा। जैसे सभी व्यक्तियोंका कोई न कोई रूप होता है और इससे वह पहचाना जाता है, किससे पहचाना जाता है ? उसकी शकलके रूपसे पहचाना जाता है। ठीक है ? सबकी शकल अलग-अलग है जिससे सब अलग-अलग पहचाने जा सकते हैं। ऐसे ज्ञानका जो रूप है वह सुख है। जैसे रूपमें कुरूपता, सुरूपता, सुंदरता, सुरूपता माने सुंदरता होती है कि नहीं होती है? ऐसे ही अपना आत्मा, ज्ञानस्वरूपी है, बहुत सुंदर है, कैसा है ? बहुत सुंदर है, क्योंकि ज्ञानका रूप ही सुख है, हमने कभी ज्ञानको, इसका रूप कैसा है ? उस दृष्टिसे-उस उद्देश्यसे देखनेका प्रयास ही नहीं किया है।

अब हमारे ज्ञानमें एक उद्देश्यको धारण करके, हमारा ज्ञान स्वयं अपने रूपको देखने के लिये प्रवृत्ति करे तो ज्ञान अकषाय रूप - माने सुखरूप है ऐसा मालूम पड़ेगा। ये प्रयोगका विषय है। प्रयोग करना होगा, और ये प्रयोग कब होगा ? कि भावभासनके stage में। इसके पहले के सब stage पास करके भावभासनके stageमें प्रयोग होता है तब ज्ञान सुखरूप दिखता है। सुखरूप दिखता है, इतना ही नहीं, पर्यायमें तो उसका sample है, एक sample परसे अनंत सुखकी खानका पता लग जाता है, address मिल जाता है।

जैसे जमीनके तजज्ञ होते हैं। क्या कहते हैं उसको? जीओलोजिस्ट-जमीनके तजज्ञ होते हैं। सुवर्ण पत्थर आता है, तो उसका वह analysis करते हैं, कि इसमें सोनेके particals कितने हैं? मिट्टीके कितने particals हैं? उस परसे उनको सोनेकी खान दिखती है कि अगर इस जगहसे यह पत्थर निकलता है तो यहाँ इतना टन सोना निकलेगा। जबकि सोना तो मिट्टीके साथ मिला हुआ है और खानमें उसके अलग-अलग परमाणु हैं लेकिन उनको हजारों टन सोना दिखता है। परसे क्या दिखा ? पूरी खान दिखी। वैसे उस stageमें आकर के अकेला ज्ञानको मात्र ज्ञानको देखने के लिये जो काबिल होता है, उसको अनंत सुखकी खान दिखनेमें आती है। और जो लगना होता है, लगता है, वह ज्ञान है, उसको ज्ञान वेदनसे feel करते हैं। किससे ? ज्ञान वेदनसे। ज्ञानके मुख्य दो धर्म हैं। एक जाननेका और एक अनुभव करनेका-वेदन करनेका। ज्ञान स्वयंका अनुभव करता है, स्वयंका वेदन करता है तो उसमें सुखका, निराकुलताका वेदन लगे बिना नहीं रहेगा।

कृपालुदेवने ७५१ नंबरके पत्रमें भावभासनकी परिभाषा इस प्रकार लिखी है। **'परमार्थकी स्पष्ट अनुभवांशसे प्रतीति'**। अनुभवांश माने लगना। भावभासनमें क्या हुआ ? sample चख लिया तब सुख लगा। ४७१ और ४७२ नंबरके पत्रमें कृपालुदेवने उसको 'सुधारस' बोला है। बीजज्ञान बोलकरके सुधारस बोला है। **'वह केवलको बीजज्ञानी कहे, निजको अनुभव बतलाई दिये'**। भावभासनमें वह सुखशांतिका sample अनुभवमें आता है। वहाँ तब अनंत सुखकी खानका पता लग जाता है और परिणाम अपने स्वरूपमें दौड़े- दौड़ लगाने लगते हैं। क्या होता है ? दौड़ लगाने लगते है। फिर परिणाम धीरे-धीरे नहीं चलते। इसलिये जिसको भावभासन होता है उसको बहुत अल्पकालमें स्वानुभव होता है, देर नहीं लगती।

कृपालुदेवने सौभाग्यभाईका इस भावभासनके विषयमें ध्यान खींचा है लेकिन सौभाग्यभाई कृपालुदेव के प्रति प्रेमसमाधिमें आ गये थे। वहाँ से समाधि छूटती नहीं थी क्या ? समाधि छूटती नहीं थी और खुद (कृ. देव) वचनबद्ध थे। उन्होंने promise दिया था-वचन दिया था कि हम इस भवमें आपको आत्मज्ञानकी प्राप्ति करायेंगे। अगर हमारे निमित्तसे, हमारे हाथसे ऐसा काम हुआ, तो यह भी हमारे लिये बहुत बड़े सौभाग्यकी बात होगी।

ऐसा करके लिखा है और सौभाग्यभाई आगे बढ़ते नहीं थे, (प्रेमभक्तिसे) निकल नहीं रहे थे और (कृ.देव) भावभासनका विषय छेड़ते थे लेकिन उनका ध्यान नहीं जाता था। फिर जब आयुष्यके आखरीके दिन आये तब कुछ treatment दी और फिर ले गये ईडर। ईडर जाकरके वहाँ उन्होंने बीजज्ञान माने ये भावभासनवाला प्रयोग दिखाया। क्या दिखाया ? प्रयोग दिखाया, देखो ! हमारा ध्यान ऐसे लगता है। ये हमारे ध्यानकी प्रक्रिया है, ऐसे परिणाम अंतर्मुख होते हैं। तुम देखो ! गौर से देखो! अधिक गौरसे देखो! आपको भी दिखेगा। (सौभाग्यभाई) उदाहरणरूप है, हम भी देख सकते हैं (लेकिन) देखनेके लिये हमारी योग्यता होनी चाहिये।

(ऐसी) योग्यता भावभासनके stageमें आती है इसके पहले अवलोकनका stage चलता है। लगातार अवलोकन चले इसके लिये पूर्णताका लक्ष्य होना आवश्यक है, इसके बिना नहीं चल सकता। पूर्णताका लक्ष्य, शुद्ध अंत:करणके बिना कभी होता नहीं और परिभ्रमणकी वेदना-चिंतनाके बिना अंत:करणकी शुद्धि कभी होती नहीं। इसलिये इस क्रमसे जो आगे बढ़ते हैं उनको अपना सुख अपने स्वरूपमें दिखाई देता है। अनुभवांशसे माने लगता है। feeling stage में वह अनुभव होता है और भावभासन आ जाता है। परिणाम दौड़ने लगेगा, दौड़ लगायेगा। ये बात बिना सत्संग और बिना परम सत्संगके संभव नहीं है। इसलिये इसके पहले कोई ध्यान करता है वह हवाईकिला है। हवाईकिला! वह हवामें चलता है, कुछ होनेवाला नहीं है। उसको तरंग बोला है, तरंगी लोग होते हैं न! नये-नये तरंग उठाते हैं। वास्तविकताका उसमें अभाव है। उसमें बिलकुल वास्तविकता नहीं है।

'संतके बिना अंतकी बातका अंत नहीं पाया जाता' अंत माने भवअंत, अंत माने भवभ्रमणका अंत। इसका जो विषय है वह संतके बिना इसका कोई अंत माने छूटनेकी मूल बात समझमें नहीं आती है। इसका मतलब यह हुआ कि जिसने ऐसा अनुभव किया है, भवभ्रमणके अंतके विषयमें जो अनुभवी है, वही इस बातको बतायेगा, बता सकेगा। दूसरेको इस बातका पता नहीं है तो कहाँसे बतायेगा? इसलिये ज्ञानीके बिना ये भवभ्रमणका अंत आनेकी बात समझमें नहीं आती और प्रयोगमें भी नहीं आती

'लोकसंज्ञासे लोकाग्रमें नहीं पहुँचा जाता।' लोकाग्र माने सिद्धालय। लोकमें अग्र-सबसे ऊपर क्या है ? सिद्धशिला जहाँ सभी सिद्ध बिराजमान हैं। अनंत सिद्ध बिराजमान हैं। अपनी जो भुगोल है उसमें ऊपर सिद्धशिला है। अगर हमको निर्वाणपदकी प्राप्ति करनी है, सिद्धपदकी प्राप्ति करनी है तो हमें लोकसंज्ञाका त्याग करना होगा। लोकसंज्ञा माने क्या ? लोगोंकी दृष्टिसे हमे चलना-हमें कार्य करना, वरना लोगोंको क्या लगेगा ? ऐसा करेंगे तो लोगोंको क्या लगेगा ? ऐसा करेंगे तो लोगोंको-समाजको क्या लगेगा ? ये समाजके दृष्टिकोणसे जो जीव जीवन जीते हैं वे कभी अपना आत्मकल्याण नहीं कर सकते क्योंकि आत्मकल्याण करना यह सामाजिक विषय नहीं है। एक special line है। जैसे किसीको heart attack आता है तो क्या समाजवालेसे पूछता है? (कि) मुझे क्या करना चाहिये ? वह cardiologistके पास चला जायेगा। और उसमें भी जो अच्छेसे - अच्छा होगा उसके पास जायेगा। तब समाजकी मीटिंग नहीं बुलानी पड़ेगी (कि) देखिये हमको कभी-कभी इधर दर्द होता है आप बताइये, कि आप लोगों की दृष्टिसे हमको क्या करना चाहिये? (ऐसा करने जायेगा तो) मर जायेगा क्योंकि ये तो इसके expert लोगोंकी एक special line है।

ऐसे आत्मकल्याण करना वह भी इसके जो expert होते हैं उसकी लाइन है वह समाजकी लाइन थोड़ी न है? हम कहते हैं कि देखो हमें धर्म करना है परन्तु समाजवालोंकी नजरमें हमारी जो इज्जत है, वह वैसीकी वैसी बनी रहनी चाहिये। उसका आत्मकल्याण कभी नहीं होता । कहाँ तक ये लोकसंज्ञा काम करती है? कि जिस groupमें अपनी जान पहचान होती है, वह

जान पहचानवालोंकी नजरमें हमको हमारा जो स्थान है उसको बनाये रखना है। उसको टिकाये रखना है ये भी लोकसंज्ञा है। फिर चाहे वह पाँच-पच्चीस लोग हो, या कितने भी ज्यादा अधिकसे अधिक संख्यावाले हों। ये लोकसंज्ञा है।

दूसरे लोगोंकी नजरमें हमारा दिखाव क्या होगा ? यह लोकसंज्ञा है। दृष्टांत लेना हो तो बहुत अच्छा दृष्टांत है, कि जैसे हम अभी बोल रहे हैं, आप लोग सुन रहे हैं, तो आपकी नजरमें मेरी अच्छी से अच्छी impression बननी चाहिये, ऐसा भाव अगर मुझे हो तो यह मेरी लोकसंज्ञा हो गयी। मैं इतना अच्छा बोलूँ, इतनी अच्छी बातें बताऊँ, इतनी style से बताऊँ तो मेरी इज्जत बढ़े। ओरेटरी होती है न? वक्तृत्वकला, बात करनेकी भी कला होती है। सबको अच्छा लगे और सबकी नजरमें मेरा दिखाव अच्छा हो जाये ऐसा हो तो यह हो गई लोकसंज्ञा। जो आदमी सामाजिक platform पर खड़ा रहता है उसको लोकसंज्ञा होनेके chances ज्यादा हैं। ये platform है, गद्दी पर बैठना एक platform है। धार्मिक platform पर बैठकर लोकसंज्ञासे बचना बहुत कठिन बात है - बहुत कठिन बात है। समझदार लोग तो बैठते ही नहीं हैं और यह उसकी समझदारी है। ठीक ! कई समझदार लोग तो बैठते ही नहीं। कहेंगे कि हमको नहीं बैठना है, क्या ? लोकसंज्ञामें आ जायेंगे, तो जिसकी capacity है वह बैठे और लोकसंज्ञामें नहीं आये उसका वहाँ बैठनेका काम है बाकी दूसरेका काम है ही नहीं। लोकसंज्ञावालेका कभी आत्मकल्याण नहीं होता है।

कृपालुदेवका यह सैद्धांतिक सूत्र है, बहुत गहरे अनुभवसे यह बात लिखी है। इतने समर्थ पुरुष थे - बहुत बड़ी capacity थी। महाज्ञानी थे ऐसा कह सकते हैं। फिर भी अपने विषयमें लिखते हैं कि हम उपदेशक बनके किसीको उपदेश नहीं देते हैं। कोई धर्मके जिज्ञासु जीव आते हैं तो उनको दिशा सूचन कर देते हैं कि धर्म तो इस तरहसे होता है। अगर कोई पात्र जीव आता है, तो उसको इसका जो राज है- secret है वह बता देते हैं कि हमने ऐसे पाया है। आपकी योग्यता है इसलिये बात बता दी है। पुरुषार्थ करोगे तो आपका काम हो जायेगा। उपदेशक बनके ऐसा करो, वैसा करो, ऐसा नहीं करना, वैसा करना, ये हमारा काम नहीं है। वे कभी platform पर नहीं आये। यद्यपि समाजके कुछ लोग उनके पीछे लगे थे तो धर्मकी बातें करते थे लेकिन उपदेशक बनके नहीं करते थे। बहुत सभानदशामें बात करते थे। ऐसे जो ज्ञानी हैं वे बचते हैं। उनको लोकसंज्ञा नहीं है बाकी तो लोकसंज्ञामें जो आते हैं उनको पता ही नहीं चलता (कि) हम लोकसंज्ञामें आ गये। क्या करें बेचारे? और आत्मकल्याणसे वंचित रह जाते हैं। इसलिये सभी मुमुक्षुओंको खुदका आत्मकल्याण करनेमें समाजका विचार बीचमें नहीं लाना है। जैसे भी अपना आत्मकल्याण हो जाय, (सबसे बड़ी समस्या है जन्म-मरणके नाशकी) वही कर लेना है। यह रोग मिटानेमें हमको समाजकी बात बीचमें लानी नहीं है।

खास करके हिन्दीभाषी प्रांतोंमेंसे लोग आते थे, हमारे सोनगढ़ में कई लोग आते थे, बहुत लोग आते थे, वे लोग ऐसी बात करते थे कि हमको समाज के बीचमें रहना पड़ता है। क्या करें ? हमारा समाज ऐसा है, हमारा समाज ऐसा है, यह बात तो कोई सुननेको तैयार ही नहीं है, क्या करें ? जैसे शुभभावसे धर्म नहीं होता, तो हमारे समाजमें (ये बात) कोई सुननेको तैयार ही नहीं है। भक्ति, पूजा ये (सब) तो होना ही चाहिये। यह बात तो सबसे पहले होनी चाहिये और हमारे यहाँ तो भगवानके दर्शन किये बिना कोई मुँहको पानी भी नहीं लगाते। मुँहको पानीका ग्लास भी नहीं लगायेंगे। शुभभाव से धर्म होता नहीं और ऐसे समाजके साथ रहना है, क्या करें? अगर समाजके साथ ही रहना है तो भवभ्रमण करो और समाजके साथ नहीं रहना है तो लोकाग्रमें-सिद्धालयमें चले जाओ, वहाँ कोई समाज नहीं है। वहाँ पर सिद्ध

परमात्मा हैं। अपने-अपने ध्यानमें बैठे हैं, अब आपको किसके बीचमें रहना है? सिद्धोंके बीचमें रहना है? या संसारीयोंके बीचमें रहना है? ये निर्णय आपको करना है। लेकिन समाजमें हमारी (जो) इज्जत-आबरू है इसका क्या? तब नाक आड़े आती है। अरे! तुम तीन लोकके नाथ हो! इसके आगे समाजकी इज्जत-आबरु कुछ नहीं है। नीच पदमें उच्च पद क्यों मानते हो? भीतरमें तुम खुद परमात्मा हो। सबसे बड़ा पद खुद परमात्माका है। समाजकी इज्जतवाला पद इतना बड़ा नहीं है। समाजकी इज्जतमें आपको सैकड़ों-हजारों लोग जानते हैं कि ये बहुत अच्छे हैं, और अगर इस मार्गमें आप लायक हो गये, पात्र हो गये तो अनंत सिद्ध परमात्माके ज्ञानमें आयेगा कि यह जीव अल्पकालमें सिद्ध बनेगा। कितने सिद्ध हैं? अनंत सिद्ध परमात्माके ज्ञानमें आपकी स्थिति मालूम पड़ेगी। अब देखिये! आपको किसकी नजरमें आपकी इज्जत बढ़ानी है? comparison कर लीजिये। सैकड़ों-हजारों संसारी लोगों के बीचमें अपनी इज्जत रखनी है? या अनंत सिद्धोंके ज्ञानमें अपनी इज्जत रखनी है। किसके ज्ञानमें रखनी है ? विवेक करना चाहिये।

कृपालुदेवने इसीलिये तो लोकसंज्ञाके परिणामोंको कालकूट जहर बताया है। क्या बताया है ? कालकूट झहर बताया है। इसलिये कालकूट जहर बताया है क्योंकि जिसको लोकसंज्ञा होती है उसको कभी परलक्ष्य मिटता नहीं है। उसको कभी स्वलक्ष्य नहीं होता है। और इस परलक्ष्यसे कितना भी धर्मसाधन करो, सब (निष्फल) जायेगा, वह सबको (निष्फल) कर देगा। कोई सफलता नहीं मिलेगी, इसलिये उसको कालकूट जहर बताया है।

१९४ नंबरके पत्रमें जो चार प्रतिबंध लिखे हैं; समाज प्रतिबंध, कुटुंब प्रतिबंध, शरीर प्रतिबंध और संकल्प-विकल्प प्रतिबंध। इसमें सबसे बड़ा समाज प्रतिबंध दिखाया है कि समाजको खुश रखकरके आत्मकल्याण कोई करना चाहेगा लेकिन उसको कल्याण करनेमें सबसे बड़ा प्रतिबंध वह है। ऐसे कुटुंब परिवारको, सबको राजी (खुश) करके मैं अपना आत्मकल्याण करूँ यह कभी होनेवाला है ही नहीं। क्योंकि एक कुटुंबमें जितने भी व्यक्ति हो सबके विचारका मेल हो यह संभव नहीं है। मिले तो ठीक है, नहीं मिले तो भी अपना आत्मकल्याण तो करना ही चाहिये। कुटुम्बमें बड़ी तकलीफ होती है। क्योंकि समाजके लोगोंके प्रति इतना स्नेह नहीं होता है। जबकि परिवारके सदस्योंके प्रति स्नेह होता है - प्रेम होता है। अध्यात्मकी भाषा में उसको राग कहते हैं, क्या कहते हैं ? राग कहते हैं, और वह नाजुक परिस्थिति है कि जिसके साथ प्रेम हो-स्नेह हो उसको नाराज कैसे करे? वह माने नहीं अब करे क्या? यह परिस्थिति - थोड़ी कठिनाई पैदा करनेवाली तो अवश्य है ही लेकिन जिसको आत्मकल्याण करना ही है वह ऐसा सोचता है कि ये मेरे परिवारवाले, जिनके प्रति मेरा स्नेह है वे तो इस भव पर्यंत हैं, ऐसा स्नेह मैं अनंत कुटुंबके साथ करते-करते इधर आया हूँ। अभी कुछ कालके बाद ये भी समाप्त हो जायेगा। यह बात भी समाप्त होनेवाली है ही। स्नेह है इसका मतलब यह नहीं है कि अनंतकाल साथमें रहेंगे और हमारा स्नेह भी रहेगा यह बननेवाला नहीं है। जब बात कुछ काल तककी है, सीमित है तो उसको weightage नहीं देना चाहिये, कि हम अपने-हमारे आत्मकल्याणको छोड़ दें। ऐसा नहीं होना चाहिये। कुछ करके adjustment - रास्ता निकलता हो तो निकाल देना चाहिये। नहीं निकले तो हमारी भावना आगे बढ़नी चाहिये। हमारी भावनामें कमजोरी नहीं आनी चाहिये। तभी आत्मकल्याण होता है वरना कुटुंब प्रतिबंधसे दुर्गति की प्राप्ति होती है। ये कुटुंब स्नेहका फल क्या है? दुर्गति है। सुगति नहीं है।

कृपालुदेवका ५१० नंबरका पत्र है कि दूसरे जीवमें पितापना-पुत्रपना करके इस जीवने अपना बुरा करनेमें कोई कसर नहीं रखी। बुरा करनेमें कोइ कमी नहीं रखी। यह बहुत normal दिखता है। कुटुंबप्रेममें कोई abnormalअपराध नहीं दिखता। normal position दिखती है लेकिन वही दुर्गतिका कारण है। हमें

दीर्घदृष्टिसे विचार करना है कि यह कुटुंब स्नेहके बहाने हम दुर्गतिमें जायेंगे तो क्या हमारे कुटुंबवाले इस दुःखसे छुड़ानेको आयेंगे ? ये कोई आनेवाले नहीं हैं, हमको अकेलेको भोगना है। यह दुःख हमको अकेलेको भोगना पड़ेगा इसलिये हमको सावधान होना है और इसकी एक मर्यादा कर लेनी है, मर्यादामें चलना। एक साथ उसको उड़ा नहीं सकते लेकिन मर्यादा तो अवश्य करनी चाहिये और उस मर्यादामें हमारा जो रस है, तीव्र रस है वह फीका हो जाना चाहिये। यह मर्यादाका सबसे पहला कदम है। यह रस फीका होनेसे हमारी प्रवृत्ति भी सीमित हो जायेगी। हमारे परिणाम भी सीमित हो जायेंगे। और हम दुर्गतिका रास्ता छोड़करके मुक्तिका मार्ग जो पंचमगति है उसमें प्रयाण करनेके लिये तैयार हो जायेंगे। इसलिये यह विवेक करना है कि हमें लोकसंज्ञामें भी नहीं रहना है और कुटुंब प्रतिबंधमें भी नहीं रहना है। फिर बात आयेगी शरीर प्रतिबंधकी। शरीरकी शाता-अशाताको मुख्य करके भी हमको आत्मकल्याण को गौण करना नहीं है।

'लोकत्यागके बिना वैराग्य यथायोग्य पाना दुर्लभ है।' क्या कहते हैं ? लोकत्यागमें असत्संगका त्याग है और कुसंगका त्याग है। जिसको आत्मकल्याणके वशात् उदासीनता आती है, उसको लोगोंका परिचय अच्छा नहीं लगता। (उसे लगता है) क्या है इसमें ? क्या रखा है ? कुछ लोग इकट्ठे होते हैं। खान-पीन और entertainment की कुछ प्रक्रिया चलती है तो उसमें artificial आनंद लेनेके सिवाय उसमें कुछ दम है ही नहीं। क्या है इसमें ? क्या रखा है? सही आनंद तो वह है ही नहीं और कृत्रिम आनंद कैसे जुटाना उसका प्रयास होता है, तब लोग एक दूसरेको ज्यादा मिलते हैं, कोई मित्र-मंडल बनाते हैं, कोई क्लब बनाते हैं, कोई सोसायटी बनाते हैं, कोई ऐसे करते हैं, कोई वैसे मिलते-जुलते रहते हैं, उसमें कुछ दम नहीं है। अपना मनुष्य जीवन बहुत मूल्यवान है। ऐसे artificial आनंदमें हमको हमारा समय गँवाना-खोना यह विवेक पूर्ण बात नहीं है। इसलिये जिसको आत्मकल्याण करना है, उसको लोक त्यागका भाव आता है। लोक में संसारी लोग दूसरे लोगोंका सम्बन्ध बढ़ानेका प्रयास करते हैं। जैसे कि जितना भी अपना सम्बन्ध ज्यादा उतना अच्छा, सबसे ज्यादा होना चाहिये। मोक्षमार्गमें चलनेवाले इसको काटते जाते हैं, जो भी सम्बन्ध है उसको समाप्त करते जाते हैं। हमको हमारा काम करना है उसमें हमको समय गँवाना पोसाता नहीं है। इसलिये अपना समय बचानेके लिये और परिणाममें दुर्गुण नहीं आयें इससे बचनेके लिये सद्गुणकी प्राप्तिके लिये हो सके उतने contacts को कम करना चाहिये।

प्रश्न : दोनों प्रकारके सम्बन्ध निभाये तो क्या ?

पू. भाईश्री : दो बाजूके contacts एकसाथ नहीं रहते। स्वरूपमें ध्यान लगाना है तो बाहरके जो सम्बन्ध हैं, उस attachmentको detach करना होगा, तभी तो काम होगा उसके बिना नहीं होगा। इसलिये यह परिस्थिति पैदा होती है।

'यह कुछ झूठा है? क्या?' बराबर नहीं है क्या? ऐसा प्रश्न उठाया है। **'परिभ्रमण किया तो किया अब उसका प्रत्याख्यान लें तो?'** यानी निर्णय करना चाहिये कि अब मुझे परिभ्रमण करना नहीं है, ऐसा निर्धार, दृढ़ निर्धार करना चाहिये तो इसके लिये प्रत्याख्यान ले सकते हैं क्या ? हाँ, ले सकते हैं। अगर हम चाहें तो ले सकते हैं ये कोई ऐसी कठिन बात नहीं है कि हम परिभ्रमण तोड़नेके लिये तैयार न हो सकें ऐसी कोई बात है ही नहीं। जब भी चाहें-आज चाहें, अभी चाहें तो ये ले सकते है इसमें कोई बड़ी बात है ही नहीं, क्योंकि बाहरका तो कोई फेरफार करना नहीं है। ग्रहण-त्याग का कोई विषय नहीं है। अपने परिणामोंमें - भावोंमें एक निश्चय करना है, निर्धार करना है कि हमको decision लेना है, कि यही करना है- दूसरा कुछ नहीं करना है। अगर यह ले सकते हैं तो **'यह भी आश्चर्यकारक है।'** क्या लिखा है ? परिभ्रमण नहीं करना है ऐसा निश्चय दूसरे लोग तो नहीं कर सकते, लेकिन जो इस विचारधारामें आते हैं, उसमें भी सब नहीं कर सकते। उसमें भी बहुत

अल्पमात्रामें, कुछ एक जीव ऐसे निर्धारमें आते हैं। इसलिये यह निश्चय करनेवाला भी अगर कोई होता है, तो उसको एक आश्चर्यकी घटना समझना। **'यह भी आश्चर्यकारक है।'** ऐसा क्यों लिखा है ? कि जीव परिभ्रमणकी चिंतनामें आत्माकी चिंतना करता है और जब आत्माकी चिंता होती है तब पर पदार्थकी चिंतना, शरीरकी चिंतना, कुटुंबकी चिंतना, भविष्यकी चिंतना वर्तमानकी चिंतना छूटती है और इस चिंताको छोड़े बिना - अनात्माकी चिंताको छोड़े बिना आत्माकी चिंता हो सकती नहीं। परिभ्रमणके विषयमें आत्माकी चिंता नहीं क्यों होती ? कि अनात्माकी चिंतामें इतना रुक गया है कि आत्माकी चिंता पैदा ही नहीं होती है। फिर भी अगर कोई नहीं रुका और इस चिंतनामें आया तो एक आश्चर्यकारक घटना है ऐसा लेना है इसलिये लिखा कि यह भी एक आश्चर्यकारक है।

'अभी इतना ही' इससे ज्यादा नहीं कहेंगे। आश्चर्यकारक है ऐसा कहकरके बातको समाप्त कर दिया है कि अब तो इतनी ही बात है, **'फिर सुयोगसे मिलेंगे।'** मिलेंगे तब मिलेंगे। अब इस बातको यहाँ ही समाप्त करते हैं **'यही विज्ञापन'** है। लिखनेवाले **'रायचन्दके यथायोग्य'** ऐसे करके पत्रको समाप्त किया है। तो इस तरहसे सारे पत्रका सारांश यह है कि सबसे बड़ी समस्या जो परिभ्रमण की है उसको अग्रताक्रममें मुख्य करके इसी कार्यमें हमको लगना चाहिये। यही एक परम विवेक है वरना अविवेकसे तो उसका फल भोगना अनिवार्य हो जायेगा ! (पत्र यहाँ समाप्त होता है।)

*

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (जनवरी-२०२४, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पण राशि
स्व. विपुलभाई एन.शाह (ह. ईलाबहिन), अमरिका एवं
स्व. तुषारभाई जे. शाह (ह. दर्शनाबहिन), अहमदाबाद
की ओर से ट्रस्ट को साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

पूज्य भाईश्री शशीभाईकी ९१वीं जन्म जयंती आनंदोल्लासपूर्वक संपन्न

आत्मानुभवसंपन्न परम उपकारी पूज्य भाईश्री शशीभाई की ९१वीं जन्म जयंती **'श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर'**, भावनगरमें आनंदोल्लासपूर्वक मनाई गई । इस मंगल अवसर पर बंबई, कोलकाटा, अहमदाबाद, आग्रा, बड़ौदा, सोनगढ़ इत्यादि शहेरोंसे अनेक मुमुक्षुओंने लाभ लिया। दि. १९-१२-२०२३ के दिन जिनमंदिरजी से एक भव्य रथयात्रा का आयोजन किया गया।

दि. २०-१२-२०२३ जन्म जयंती के दिन बालकुंवर का पारणाझुलन, जन्मबधाई, गुरुभक्ति एवं **'अध्यात्मपिपासा'** भाग-४ (गुजराती) का विमोचन आदि कार्यक्रम सानंद संपन्न हुए ।

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी विडीयो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. १४-A

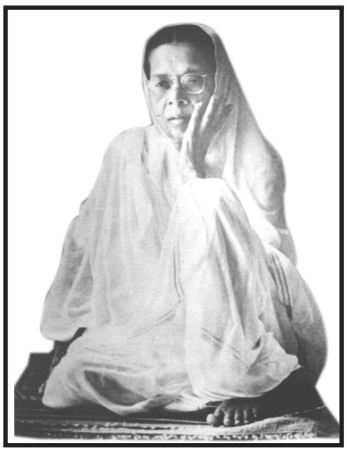

मुमुक्षु :- ऐसे देखे तो दृष्टि अपेक्षासे आत्मा ज़ोर देता है और ज्ञान अपेक्षासे जानने का कार्य भी ज्ञान ही करता है।

समाधान :- सब आत्मा ही करता है। सब कार्य आत्मा का। एक ही सब (कार्य) करता है। एक आत्मा ही सब करता है। उसके गुण भिन्न हैं, करनेवाला एक आत्मा ही सब करता है। एक आत्मा ही स्वयं खुद पर ज़ोर देता है और एक आत्मा ही स्वयं खुदसे सबको जानता है। एक आत्मा ही स्वयं में लीनता करता है। सब एक आत्मा ही करता है। आत्मा ही स्वयं के गुणसे अपने अस्तित्व पर ज़ोर देता है। आत्मा ही सब जानता है, आत्मा ही लीनता करता है। आत्मा ही दर्शन है, आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही चारित्र है। आता है न समयसार में?

मुमुक्षु :-

समाधान :- आत्मा प्रत्याख्यान, आत्मा संवर..

मुमुक्षु :- कोई अपेक्षासे एक आत्मा ही होनेपर भी गुणभेदसे देखें तो इतना..

समाधान :- उनके कार्य में, उनके गुणों में अन्तर है। सब साथ मिले तब साधना होती है। दृष्टि मुख्य, ज्ञान साथ रहता है और लीनता साथ में होती है। यह सब साथ मिले तब मोक्षमार्ग होता है। दृष्टि की मुख्यता हो वहाँ ज्ञान साथ में ही होता है और एक मुख्यता-एक ध्येय रखकर चले उसके साथ ज्ञान रहता है। लीनता स्थिर होने का कार्य करता है।

मुमुक्षु :- पहले प्रश्न ऐसे होता था कि ज्ञान अपेक्षासे और श्रद्धा अपेक्षासे क्या? पण्डितजीने ऐसा कहा, आत्मा श्रद्धान करता है, आत्मा जानता है।

समाधान :- सब आत्मा ही करता है। ऐसे टूकड़े क्यों करते हो? सब आत्मा ही करता है। दर्शन अपेक्षासे, यह ज्ञान अपेक्षासे। तो क्या ज्ञान को निकाल देना है? ज्ञान कोई व्यर्थ वस्तु नहीं है। दर्शन मुख्य है, मुख्य मोक्षमार्ग सधता है, लेकिन उसके साथ ज्ञानी भी उतना ही कार्य करता है। ज्ञान भी सम्यक्पने कार्य करता है और लीनता भी स्थिर होने का कार्य करती है। मुख्यता की अपेक्षासे सम्यग्दर्शन अनादिकालसे प्रगट नहीं किया है इसलिये उसपर ज़ोर दिया जाता है, उसकी मुख्यता (की जाती है)। परन्तु उसके साथ ज्ञान भी साथ ही रहता है।

सम्यग्दर्शनने ग्रहण किया कि राजा यह आत्मा ही है, बस! उसे ग्रहण किया। लेकिन वह राजा कैसा है, वह सब ज्ञान मूल कार्य करता है कि यह अनन्त गुणोंवाला है, इसमें पर्यायें हैं, उसका अस्तित्व जो दृष्टिने ग्रहण किया वह बराबर है, ऐसे ज्ञान ग्रहण करता है।

मुमुक्षु :- दृष्टिने ग्रहण किया वह बराबर है, ऐसा ज्ञान जानता है?

समाधान :- ज्ञान जानता है। दृष्टि का निषेध ज्ञान नहीं करता। दृष्टि को रखकर जानता है। दृष्टि को तोड़कर ज्ञान नहीं जानता है।

(शेष अंश अगले अंकमें..)

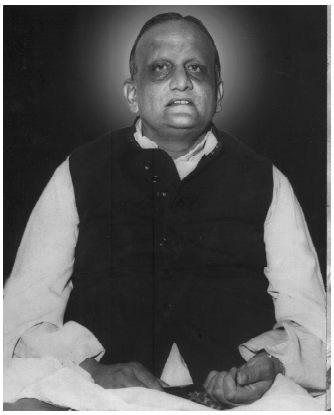

द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से 'आत्मिक सुख' सम्बन्धित पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के चयन किये गये वचनामृत

(आत्मिक आनंद के विषय में आपने कहा :) जब एक बार आनंद की घूँट पी ली...तब तो बार-बार वही घूँट पीने के लिए अपनी ओर आना ही पड़ेगा। दूसरी किसी जगह परिणति को रस ही नहीं आयेगा; बार-बार अपनी ओर आनेका ही लक्ष्य रहेगा, दूसरे सब रस उड़ जायेंगे। (२१)

*

प्रश्न : निर्विकल्प उपयोगमें कैसा आनंद आता है ?

उत्तर : निर्विकल्प उपयोगके सुखकी तो क्या बात कहें !! लेकिन समझानेके तौर-से जैसे गन्नेके (शेरड़ीके) रसकी घूँट पीते हैं, वैसे आनंदकी घूँट.... एकके बाद एक चलती ही रहती है; उसमेंसे निकलनेका भाव ही नहीं आता। (३३)

*

आनंदके अनुभवमें तो रागसे भी भिन्न चैतन्य-गोला छुट्टा अकेला अनुभवमें आता है, उसके आनंदकी क्या बात करें !! अंदरसे निकलना ही गमे नहीं, बाहरमें आते ही भट्ठी-भट्ठी लगे। (९१)

*

'मैं' ऐसी भूमि हूँ जहाँसे क्षण-क्षणमें नया-नया फल उत्पन्न होता ही रहता है। जैसे भूमिसे ऋतु-ऋतुके अनुसार अनेक फल उत्पन्न होते रहते हैं, वैसे 'मैं ऐसी भूमि हूँ' जहाँसे सुखका फल उत्पन्न होता ही रहता है। 'मैं' अमृतरससे भरा हुआ हूँ। 'मैं' तो ऐसी भूमि हूँ जिसे फलके लिए जलकी भी जरूरत नहीं रहती, क्योंकि 'मैं' स्वयं ही सुखरूप हूँ; दूसरे पदार्थोंकी अपेक्षा ही नहीं। (१८६)

*

इधर (स्वरूपमें) दृष्टि आते ही सुखके स्रोतके स्रोत बहने लगेंगे। (२७४)

*

(निर्विकल्प दशामें) बिजलीके करंटकी माफिक अतीन्द्रिय सुख प्रदेश-प्रदेशमें व्यापक होकर प्रसर जाता है। ....झनझनाहट....! काल थोड़ा होनेपर भी क्या ? (काल थोड़ा होनेसे उसकी महत्ता कम नहीं। निर्विकल्प आत्माके अतीन्द्रिय आनंदकी अनुभवदशाका माहात्म्य अचिंत्य-महिमावंत है क्योंकि एक क्षणार्धमें अनंतभवका नाश हो जाता है।) (३०५)

*

सुखका (अतीन्द्रिय आनंदका) अनुभव हुआ... सो, किसीको पूछना नहीं पड़ता; दूसरे 'ना' कहें तो कहें, अपनेको तो प्रत्यक्ष सुख आ रहा है न ! (३४४)

*

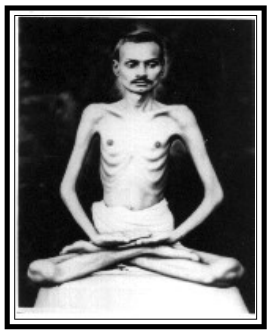

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

पत्रांक ३६३

बंबई, वैशाख सुदी ५, रवि, १९४८

अभी तो अनुक्रमसे उपाधियोग विशेष रहा करता है।

अधिक क्या लिखें? व्यवहारके प्रसंगमें धीरज रखना योग्य है। इस बातका विसर्जन नहीं होता हो, ऐसा धारणा रहा करती है।

अनंतकाल व्यवहार करनेमें व्यतीत किया है, तो फिर उसकी झंझटमें परमार्थका विसर्जन न किया जाये, ऐसी प्रवृत्ति करनेका जिसका निश्चय है, उसे वैसा होता है, ऐसा हम जानते हैं।

वनमें उदासीनतासे स्थित जो योगी-तीर्थंकर आदि-हैं उनके आत्मत्वकी याद आती है।

*

पत्रांक ३६४

बंबई, वैशाख सुदी ९, गुरु, १९४८

हृदयरूप श्री सुभाग्य,

यहाँ समाधि है। बाह्योपाधि है।

अभी कुछ ज्ञानवार्ता लिखनेका व्यवसाय कम रखा है, उसे प्रकाशित कीजियेगा।

*

पत्रांक ३६५

बंबई, वैशाख सुदी ११, शनि, १९४८

आज पत्र आया है।

व्यवसाय विशेष रहता है।

'प्राणविनिमय' नामकी मिस्मिरेजमकी पुस्तक पहले पढ़नेमें आ चुकी है, उसमें बतायी हुई बात कोई बड़ी आश्चर्यकारक नहीं है; तथापि उसमें कितनी ही बातें अनुभवकी अपेक्षा अनुमानसे लिखी हैं। उनमें कितनी ही असंभव हैं।

जिसे आत्मत्वका ध्येय नहीं है, उसके लिये यह बात उपयोगी है; हमें तो उसके प्रति कुछ ध्यान देकर समझानेकी इच्छा नहीं होती, अर्थात् चित्त ऐसे विषयकी इच्छा नहीं करता।

यहाँ समाधि है। बाह्य प्रतिबद्धता रहती है।

सत्स्वरूपपूर्वक नमस्कार

*

श्री कुंदकुंदाचार्यदेवकी तपोभूमि - पोन्नुर हिल

श्री समयसार जैसी कृति जो कुंदकुंदाचार्यजीने की, इस कृति पर से इनकी महानता के दर्शन होते हैं, उनकी स्वभावदृष्टि के दर्शन होते हैं। उन्हें न केवल स्वभावदृष्टि थी, इससे अतीरिक्त स्वभावदृष्टि की अभिव्यक्ति उन्होंने शब्दोंमें ग्रंथारूढ़ करके **fantastic** काम किया है। अति-अति सामर्थ्य के बल से ऐसा लिखा है। उनके सामर्थ्य के द्वारा लोगोंने उनकी महानता के दर्शन किये हैं।

एक समर्थ आचार्य हुए, दिगम्बर आचार्योंकी परम्परा में देखा जाये तो कुंदकुंदाचार्य बहुत समर्थ आचार्य हो गये, ऐसी प्रतीति इनकी कृतियों से होती हैं। आज भी, सैंकडों-हजारों साल पश्चात भी उनके वचनों को आधारभूत - **authentic** गिने जाते हैं। अच्छा! क्या यह कुंदकुंदाचार्य का वचन है? फिर तो बात ही खत्म हो जाती है। बात खत्म! ऐसे **authentic** वक्ता हैं वे। गुरुदेवश्री तो समयसार पर आफरीन हो जाते थे। कुंदकुंदाचार्यदेव की स्वभाव की अभिव्यक्ति कराने की शैली, स्वभावदृष्टि की अभिव्यक्ति जबरदस्त है!!

-पूज्य भाईश्री के हृदयोद्गार

(श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथ पर प्रवचन क्रमांक-६६९)

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition :
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...

Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur process 9374825041